रहीम चाचा

रहीम चाचा का स्वर सहसा तीखा और कड़ुवा होकर रात के सन्नाटे में गूँजता दूर तक फैल गया—बदज़ात कमीनी, चली क्यों नहीं जाती!

फिर एकदम घोटने वाली खाँसी में रहीम चाचा का दुखता स्वर फँस गया। कुछ देर तक लगातार उनके खोखले पड़ गये पिंजर के भीतर खाँसी का स्वर बजता रहा और फिर भीतर से बटोरकर उनके ढेर-से बलग़म के थूकने की आवाज़ आयी। एक कुहराम-सा मच गया, जिसमें चाची की भद्दी फूहड़ गालियों, सिसकियों और रोने का स्वर था और फिर गोद के सोये बच्चे के चौंककर बिलख पड़ने की आवाज़।

रहीम चाचा को कौन नहीं जानता। छोटे-बड़े सब के यहाँ उनका आना-जाना है। किसी भी उम्र की औरत उनसे पर्दा न करती और परिचित-अपरिचित किसी के यहाँ भी वह बाहर-भीतर में भेद नहीं रख पाते। कस्बे में किसी के यहाँ मीलाद हो, ऐलान सुना और रहीम चाचा ने अपना पुराना ऊनी काला कोट (जिसमें जगह-जगह छेद पड़ गये हैं और रफ़ू के निशान हैं।) पहना, आधा उधड़ गया मफ़लर लपेटा, पुरानी तुर्की टोपी, जिसका रंग लाल से बदलकर अब मटमैला

हो गया है और जिसके किनारे के लगभग एक इंच के हिस्से में तेल का रंग जमकर बैठ गया है, लगायी, दोनों हाथ सीने पर बाँधे और सामने वाले सफ़ में बैठकर सिर झुकाये और आँखें बन्द किये मौलवी साहब के नात के तरन्नुम पर हौले-हौले झूमने लगते।

किसी के यहाँ मौत होती तो खबर पाते ही रहीम चाचा जा पहुँचते और मृतक के दुखी सम्बन्धी के काँधे पर हाथ रख बड़े ही संयत स्वर में जीवन की निस्सारता, संसार की क्षणभंगुरता और मृत्यु की अनिवार्यता की याद दिला धीरज बँधाने लगते और भरे हुए स्वर में कहते, "भैया, रोने-धोने से क्या कुछ हाथ आयगा ? आप तो समझदार हैं। यों सिर धुनकर मरहूम की रूह को क्यों तकलीफ़ पहुँचाते हैं ?"

फिर स्वयं ही आने और इकट्ठे होने वाले लोगों के लिए बैठने को जाजिम डाल, दो-चार अगरबत्तियाँ जनाज़े को चारपाई के पास सुलगायेंगे और सुई-तागे लेकर कफ़न सीने बैठ जायेंगे। कफ़न सीना खत्म हुआ और गुसल कराने का तख़्ता आया तो किसी की भी प्रतीक्षा किये बिना अपने हाथों जनाज़े का गुसल करायेंगे, कफ़न पहनायेंगे और अपनी हथेलियों में कपूर-इत्र की महक और सुरमे के निशान लिये लौट जायेंगे।

फ़ातिहे के दिन यदि किसी ने रहीम चाचा का उनकी मदद और हमदर्दी के लिए शुक्रिया अदा किया तो पहले उनका लम्बा और सँकरा चेहरा, जिसमें गालों के पास सिलवटें आने लगी हैं, थोड़ा खिंचता, ओंठ एक ओर ज़रा सरकते, असमय में पड़ गयी सिलवटें थोड़ी गहरी होतीं, पेशानी पर हल्की-हल्की कई लकीरें खिंच आतीं और वह कहते, "तुम लोग किसी भले आदमी के किये का बदला इसी तरह देते हो क्या ? अरे, इन्सान की मदद इन्सान नहीं तो और कौन करेगा ?"

रहीम चाचा वैसे तो पैंतालिस के थे, पर वह अपनी उम्र से दस बरस अधिक लगते। कद साधारण, दुबला-पतला इकहरा शरीर, जिसमें अब अधिक हड्डियाँ ही रह गयी थीं। रंग थोड़ा साफ़ और खुला, पर अब धीरे-धीरे काला पड़ने लगा था। चेहरे का नक्शा बुरा नहीं था, पर गालों का मांस अब धँसने लगा था और सामने के दो-तीन दाँत उन्होंने तुड़वा दिये थे, क्योंकि उनमें काफ़ी दर्द होने लगा था और रहीम चाचा को उनसे बड़ी तकलीफ़ थी। दाढ़ी-मूँछों की आवश्यकता उन्होंने कभी नहीं समझी और अभी भी, जब वह खुले सिर होते, उनके बाल तरतीब से पीछे की ओर जमे होते थे, जिनमें पके-अधपके बालों के बीच अपने-आप ही पड़ गये छोटे-बड़े कई छल्ले अच्छे लगते थे।

जब कस्बा छोटा था, आबादी कम थी और पास-पड़ोस के शहरों में दिन-भर में केवल एक बस-सर्विस चला करती थी, रहीम के पिता कहीं से आकर बस गये और एक मनिहारी और किराने की दुकान खोल ली थी। दुकान चल निकली और कुछ ही वर्षों में रहीम के पिता ने काफ़ी पैसे कमाये थे। उनकी पत्नी थी और उनसे बच्चे भी थे, पर उन्होंने उस कस्बे में रहीम की माँ से दूसरी शादी कर ली थी।

रहीम अभी मुश्किल से दस के रहे होंगे कि उनके पिता उनकी माँ, सौतेली माँ और सौतेले बहन-भाई छोड़कर चल बसे। उनके चालीसवें के बाद रहीम के सौतेले बड़े भाई ने सारी जायदाद, जिसमें मकान-दुकान सभी थे, पर अपना अधिकार कर रहीम और उनकी माँ को अलग कर दिया। रहीम की माँ ने बहुत हाथ-पाँव मारे, पर कुछ हुआ नहीं।

रहीम अपनी माँ के इकलौते तो थे ही, सब से छोटे होने के कारण पिता का लाड़-प्यार भी उन्होंने बहुत पाया था। आज इस स्थिति में जो वह पहुँच गये हैं, उसके लिए अपने माँ-बाप के उस लाड़-प्यार को

कोसते हैं, जिसने उन्हें अनपढ़, अनगढ़ बनाकर दर-दर भटकने के लिए छोड़ दिया था। पढ़ाई के नाम पर उन्होंने कोई दस-बारह बार ही स्कूल की सूरत देखी। प्राइमर का पहला पृष्ठ भी नहीं उलटा और वर्ण-माला के दो-तीन अगले अक्षरों से ही परिचय प्राप्त करके उन्होंने जो पुस्तक धर दी तो फिर कभी न उठायी। उर्दू की पढ़ाई का प्रश्न इसलिए नहीं उठ पाया कि कोई स्कूल ही नहीं था। कुछ दिन उनके पिता के आग्रह पर एक मौलवी साहब ने आकर उर्दू का सिलसिला जमाने की कोशिश की, पर मौलवी साहब जब आते, प्रायः उस समय रहीम पतंग उड़ा रहे होते या गुल्ली-डंडा खेलते होते या गुलेल से परिन्दों का (जिनमें अधिकांश घर और आँगन में चहक रही गौरइये होतीं) शिकार करते अथवा आराम करते या सोते रहते। अतः मौलवी साहब ने आना बन्द कर दिया।

उस कच्ची उम्र में, जब रहीम ने अभी अपने खेलने के दिन भी पूरे नहीं किये थे, अपनी बेसहारा हो गयी माँ को लेकर अपने मामा के यहाँ चले आये। पर हमेशा कौन किसको खिलाता है। एक दिन रहीम की माँ को अपने भाई से एक मामूली झगड़े के बाद अपनी रसोई अलग कर लेनी पड़ी। उस बीच रहीम ने कहीं से फ़ोटो-फ्रेमिंग सीख ली और किसी तरह जोड़-तोड़कर एक ग्लास-कटर, एक आरी, एक हथौड़ा और कुछ आवश्यक चीज़ें खरीदीं और फ़ोटो-फ्रेमिंग का धन्धा शुरू कर दिया और मामा का घर छोड़कर उसी मुहल्ले में उन्होंने दो कमरे किराये पर ले लिये।

कस्बा छोटा था। शौकीनों की कमी थी। अतः धन्धा मन्दा चलता था। कभी-कभार बाहर से ट्रान्सफ़र होकर आये अफ़सर या बाबुओं के यहाँ आफ़िस-स्टाफ़-ग्रुप, फ़ेमली, गाँधी-नेहरू और अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के चित्र आ जाते। बाकी समय वह पण्डित लालूराम और

हरदयाल ठाकुर की छोटी दुकानों से दो-दो आने वाली देवी-देवताओं, तीर्थ-स्थानों, दोहों-श्लोकों और कल्मे-आयतों की तस्वीरें लाकर फ्रेम किया करते थे। पर उससे बहुत बच नहीं पाता था और खाने-पीने की बड़ी तकलीफ़ और दिक़्क़त हो जाती थी। अतः धन्धे को साइड-बिज़नेस बनाकर, इधर-उधर से कोशिश कर-कराके उन्होंने स्थानीय सरकारी प्रेस में नम्बरिंग-मैन की नौकरी कर ली।

रहीम अब चौबीस पार कर रहे थे, अतः नौकरी आदि से थोड़ा जमकर उन्होंने शादी की बात चलवायी। उनकी माँ ने पास-पड़ोस और इधर-उधर खूब आना-जाना शुरू कर दिया और उनकी शादी की चर्चा चलाने लगीं। अक्सर रात, जब वह काम से लौटते और हाथ-मुँह धोकर खाने के लिए बैठ अपने प्रेस के मैनेजर, कम्पोज़ीटर या फिर मशीन-मैन की बातों के साथ अपनी योग्यता की बातें माँ को सुनाते कि वह दिन में कितनी किताबों में नम्बरिंग कर फेंक देते हैं, बुक-बाइंडिंग उनसे अब कैसी होती है, कभी-कभी मशीन भी वह कैसे चला लेते हैं और मैनेजर उनसे कितना प्रसन्न है तो माँ उनकी अधिकांश बातों को न समझती हुई भी हाँ-हूँ कर बीच में चर्चा छेड़ देतीं कि पास के मुहल्ले में एक लड़की है। देखने में अच्छी है और उन्हें तो वह पसन्द आ गयी है। वह उसे किस तरह देख आयीं, शादी की बात कैसे चलायी और लड़की के मिल जाने की कितनी उम्मीद है.... आदि-आदि। रहीम के मन में भले कुछ भी होता हो, वह बाहर से गम्भीर बने सुनते रहते। फिर हाथ धोकर ओंठों के एक कोने में बहुत हल्के-से मुस्कराकर चुपचाप उठ जाते।

पर खानदान को लेकर ही कोई क्या करता। अच्छे बाप के बेटे होने के बावजूद सच यह था कि रहीम अनपढ़ थे और एक बहुत मामूली नौकरी करते थे। अतएव कस्बे में उन्हें लड़की देने को कोई तैयार

नहीं हुआ। दूसरे शहर में खोज के लिए उनके पास न तो पैसे थे और न कोई ऐसा सम्बन्धी, जो उनकी शादी लगा देता! अतः एक दिन उन्होंने एक बहुत ही नीच जाति की हिन्दू लड़की को ब्याह-शादी, रस्मो-रिवाज और बाजे-गाजे के बिना ही घर ला बिठाला। कुछ दिन समाज वाले चर्चा करते रहे, फिर चुप हो गये।

उसी बरस दुर्भाग्य से कस्बे का सरकारी प्रेस वहाँ से तोड़ दिया गया और रहीम बेकार हो गये। उसके बाद छै महीने किसी तरह साथ देने के बाद एक रात उनकी बीवी उन्हें अकेले छोड़कर अपने मायके भाग गयी और फिर नहीं लौटी। तीसवें बरस में उन्होंने फिर शादी की, पर उनके भाग्य में बीवी का सुख नहीं था। पाँच साल के अन्दर ही वह भी टी० बी० से मर गयी, साथ ही माँ को भी ले गयी। कम-से-कम अब तो तीसरी बीवी के लिए वह बिलकुल तैयार नहीं थे और दुर्भाग्य को कोसे बिना उन्होंने तीन बरस और बिता दिये। पर समाज के कुछ खास लोगों के बाध्य करने पर कि सकीना एक ग़रीब परिवार की अच्छी औरत है। कुँआरी न सही, अपने पति से तलाक लेकर बैठी है, पर रहीम को निभा ले जायगी तो वह अस्वीकार नहीं कर सके और काज़ी-मौलवी तथा कुछ खास लोगों की मेहरबानी से कम-से-कम खर्च में उन्होंने सकीना से निकाह कर लिया।

सकीना पास के एक देहात की एक बहुत मामूली औरत थी। उम्र तेईस। रंग काला। चाल-ढाल ढीली-ढाली, सुस्त और आवाज़ तीखी। रहीम चालीस पर पहुँचकर एक बच्चे के पिता बने। पहली पत्नियों से कोई सन्तान नहीं थी, सो इस उम्र में बाप बनने का जो उल्लास उन्हें हुआ, वर्णनातीत है। बच्चा जब ज़रा बाहर निकालने योग्य हुआ तो उसे अपनी माँ के ज़माने के रेशमी कपड़े [illegible] टोप पहना-कर, आँखों, पेशानी, हथेलियों और पाँवों के तलुओं में काजल लगा-

कर, गले में ढेर सारे गंडे-तावीज (जो माँ ने कभी उनके लिए तैयार करवाये थे और बड़ी मन्नतों के थे) डालकर, वह गोद में लेकर बाहर निकलते और सुबह की नर्म, रेशमी धूप में टहलते हुए हर आने-जाने वाले को (यदि उनकी ओर न देख रहे हों तो पुकारकर) आदाब-राम-राम करते हुए बच्चे के भरे-भरे गालों को एक बार ज़ोर से चट की आवाज़ के साथ चूमकर कहते, "अरे देखो, बेटा, कौन जा रहा है ? साबीतरी मौसी....वह नजमा आपा....अरे मुंशी काका को राम-राम नहीं करोगे !...."

और मुंशी काका चाहे दफ़्तर जाते हों, क्षण-भर रुककर रहीम के बच्चे को गोद में लेते, दो-तीन बार प्यार करते और कहते, "रहीम भाई, तुम्हारे बुढ़ापे का सहारा और तुम्हारे खानदान का चिराग़ यह बनेगा !"

रहीम का सिलवटों-भरा, सँकरा चेहरा थोड़ा फैल जाता, पीले दाँतों की जगह खुल जाती, पलकें कई बार झपक उठतीं, छोटी-छोटी निस्तेज आँखें चमकने लगतीं और वह कहते, "कौन जाने, भैया, इसकी कमाई खाने तक क्या मैं ज़िन्दा रहूँगा ।"

"जो हो, अब तुम रहीम से रहीम चाचा तो हुए !"

बच्चा कुलदीपक हो या न हो, पर उस दिन, जब उनका प्रयत्न सफल हो गया और उन्हें स्थानीय पेट्रोल-पम्प में नौकरी मिल गयी, उन्होंने अपने बच्चे को सैकड़ों बार चूमा ।

अब अक्सर रहीम चाचा के यहाँ किसी-न-किसी बात पर झगड़ा शुरू हो जाता और देर तक बड़ा हो-हल्ला और कोलाहल मचता । झगड़े का विषय इसके सिवाय और कुछ न होता कि दूसरी ओर का गुस्सा सकीना दुधमुँहे बच्चे पर उसे पीटकर निकालती या बे-बात भी चिड़चिड़ा उठती । सकीना का तेज़ कड़ुवा और तीखा स्वर रहीम चाचा

को छेदता दूर-पास की सड़कों तक फैल जाता और रहीम चाचा क्रोध में काँपते, चीखकर फटे स्वर में सकीना को डाँटते, "कमीनी ! इतना हलक क्यों फाड़ती है ?"

और फिर वह अपनी दूसरी बीवी की सिधाई-सच्चाई, स्वभाव-आदतों और साहिष्णुता की प्रशंसा करते, अपने भाग्य को कोसते कि तक़दीर ने उनसे लछिमी-जैसी बीवी छीन इस फूहड़, भद्दी और नीच औरत का संग करा दिया, नहीं तो वह चाहे लाख ग़रीब रहे हों, क्या इस औरत के लायक थे !

तब सकीना का स्वर और तेज़ और कड़ुवा तथा कर्कश हो उठता। फूहड़ गन्दी गालियाँ बकती और ऊँचे स्वर में उलाहने देती कि वह उसके मकान का पता पूछती-पूछती तो नहीं आ गयी ! भरी महफ़िल में निकाह करके लायी गयी है। अगर वह उससे ऐसे ही ऊब उठा है तो क्यों नहीं दूसरी इन्नर की परी ले आता ! वह भी तो देखे कि कौन कलमुँही उस घर में टिकती है !

और फिर वह उन सारे लोगों के बाप-दादा (मरे और ज़िन्दा दोनों) पर कस-कसकर वज़नी-से-वज़नी गालियाँ उछालती, जिन्होंने उसके अस्वीकार करने के बावजूद उस जैसे आदमी के संग उसका भाग्य जोड़ दिया, जो दो जून सूखी रोटियाँ तक उसके आगे नहीं डाल सकता। चीखते-चीखते सकीना का हलक सूख जाता, स्वर बैठने लगता और तब वह ऊँचे स्वर में रो पड़ती और लगभग घण्टे-आध घण्टे तक लगातार लय-तान के साथ रोती रहती।

पर उस दिन, जब रहीम चाचा पहली तनख़्वाह लेकर आये, बड़ी रात गये तक रहीम चाचा के घर से उनकी और सकीना की खुलकर हँसने की आवाज़ फैल रही थी। रहीम चाचा ने हँसते हुए बड़े मीठे स्वर में स्नेह-भरी झिड़की दी और बहुत आहिस्ते से समझाते हुए

सकीना को दोष दे डाला कि उसके ही पागलपन और नासमझी के कारण उन्हें क्रोध हो आता है और वह अपने को न सम्हाल पा उसे बुरा-भला कह डालते हैं, वर्ना ओछी और छोटी जात वालों की तरह दिन-रात लड़ाई-झगड़ा करना उन्हें क्या अच्छा लगता है !

सकीना ने अपने स्वभाव के विपरीत उस दिन सारे दोष स्वीकार कर लिये और संकोच में झुककर हल्की-सी हँसी के साथ जैसे क्षमा माँग ली। रहीम चाचा ने सकीना को बड़ी देर तक अपने सुखद सपने सुनाये कि पहले महीने की तनख़्वाह से कुछ बचाकर वह सकीना के लिए कैसी और कौन-सी साड़ी खरीदना चाहते हैं, बच्चे को नीली रेशमी कमीज़ में किलकते देखने की उन्हें कितनी हसरत है और ठण्ड के दिनों में सकीना का केवल एक पतली चादर में ठिठुरना देखकर उन्हें कितनी कोफ़्त होती है।

सकीना के काले और सूख गये गालों में खून का हल्का उबाल आया, ओंठ कई बार दाँतों-तले दबे, मुस्कराहट की रेखा ओंठों के नीचे उभरी और उल्लास को दबाते हुए उसने मीठी झिड़की-भरे स्वर में कहा कि बच्चे का क्या है, घर में ही रहता है। कम्बल लाने की अभी कोई खास ज़रूरत नहीं, क्योंकि ठण्ड अभी दूर है और उसके लिए साड़ी कभी फिर बाद में भी खरीदी जा सकती है। सब से पहले उन्हें अपने लिए कमीज़ सिला लेनी चाहिए, क्योंकि उनकी कमीज़ फट गयी है। उन्हें अब नौकरी में छोटे-बड़ों के साथ उठना बैठना पड़ेगा।

रहीम चाचा ने थोड़ी देर के विरोध के बाद हँसकर अपनी हार मान ली।

उसके बाद छै-सात महीने ऐसे आहट-हीन बीत गये कि स्वयं रहीम चाचा को भी उसका अहसास नहीं हो पाया। रहीम चाचा बड़ी सुबह नाश्ता करके निकल पड़ते और दोपहर के एक-दो बजे लौटते। खाने

के बाद दोपहर को जो जाते तो फिर रात दस के पहले नहीं लौट पाते। दिन-भर के काम से चूर-चूर हो गया जिस्म ढकेलते जब वह घर आते तो बच्चा सो गया होता। रहीम चाचा से अकेले खाया न जाता। सकीना के मना करते रहने पर भी वह बच्चे को सोते में प्यार करते, जगाते और साथ बैठाकर उससे खेलते-हँसते कोई पौन घण्टे में खाना खाते। खाना हुआ तो कुछ देर बर्तनों की उठा-पटक के स्वर में सकीना की हँसी और गुनगुनाहट के साथ रहीम चाचा की हँसी का स्वर तैरता।

उस दिन रहीम चाचा नौ बजे सुबह ही वापस आ गये। उनका चेहरा बड़ा सूखा, शान्त और निर्विकार हो रहा था और गालों की सिलवटें ज़्यादा झुकती-लटकती दिख रही थीं। पता चला कि उनकी नौकरी छूट गयी।

नौकरी छूटने का कारण बाद में मालूम हुआ। उन पर चोरी का झूठा इल्ज़ाम लगाया गया था। दरअसल उनसे वहाँ के दूसरे लोग उनकी सच्चाई से जलते थे और उनके खिलाफ़ साज़िश की गयी थी। नहीं तो एक गैलन मिट्टी के तेल के लिए उनकी नीयत क्या ख़राब हो सकती थी!

कुछ दिनों तक फ़ोटो-फ्रेमिंग से दो जून दाल-रोटी चली। पहले रहीम चाचा कस्बे में अकेले ही फ्रेमिंग का काम करते थे, पर अब कस्बे की आबादी दिन-ब-दिन बढ़ने लगी थी और उनके देखते-देखते ही सदर बाज़ार में दो दुकानें और खुल गयीं। रहीम चाचा के पास रोज़गार ठीक ढंग से करने के लिए पूँजी न थी। उनकी अपनी कोई दुकान न थी। जो भी काम मिल जाता था, वह घर लाकर स्थानीय बाज़ार से काँच-फ्रेम ख़रीदकर करते थे, जब कि दूसरी दुकानों वाले दूसरे शहरों से पचासों रुपये के थोक काँच और फ्रेम मँगाकर काम करते थे। इस-

लिए उनसे होड़ करना रहीम चाचा के लिए असम्भव था। बाज़ार के बीच ढेरों देवी-देवताओं, नेताओं-महापुरुषों और अभिनेता-अभिनेत्रियों के सुन्दर, आकर्षक चित्रों से सजी शीशों में चमकती उन दुकानों के आगे धीरे-धीरे रहीम चाचा की फ़ोटो-फ्रेमिंग को लोग भूल बैठे। और इस तरह रुपये-आठ आने का जो आसरा था, वह भी जाता रहा।

इस बीच नौकरी के लिए उन्होंने कई दरख़्वास्तें दीं। रोज़ किसी-न-किसी आफ़िस में वह एकाध दरख़्वास्त दे आते। दरख़्वास्त लेकर जब वह पहुँचते तो यही काला कोट होता, टख़नों से ऊँचा उटंग पैजामा और वही तेल-जमी पुरानी टोपी, जिसे साहब के कमरे में पहुँचने के पहले ज़रा ठीक से लगा लेते, सामने की सिकुड़ गयी कमीज़ खींचते और सलाम कर, दरख़्वास्त थमा, अदब से एक कोने में खड़े हो जाते। साहब उनकी ओर देखें या न देखें, पर जब वह उस दरख़्वास्त में कुछ लिखकर किसी बाबू के पास भिजवा देते तो रहीम चाचा भीतर तक भींगकर जैसे बहते-से स्वर में सलाम करते और ओंठों के कोने में मुस्कराते हुए उस बाबू के पास पहुँचते, जिसकी मेज़ पर उनकी नौकरी और भूख की भीख दबी होती। पर जब थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद बाबू बताते कि अभी कोई जगह नहीं तो वह अपनी धुँधला गयी आँखों को नीचे कर, गर्दन झुका, उतरे चेहरे और भारी कदमों से लौट आते।

वैसे तो रहीम चाचा का स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रहा। पर नौकरी छूटने के बाद वह बहुत कमज़ोर हो गये। कुछ महीने नौकरी की तलाश में उन्होंने बहुत दौड़-धूप की और बीमार हो गये। सकीना का स्वभाव और भी चिड़चिड़ा हो गया। उसकी आवाज़ के तीखेपन में अब ज़हर समा गया था, जिसे रहीम चाचा खाट पर पड़े-पड़े अपनी लम्बी-लम्बी साँसों में घोलकर पिया करते।

अब बड़ी रात गये तक रहीम चाचा के घर में शोर उठता रहता

है। उसमें सकीना के तीखे ताने, कड़वे-उलाहने, अकारण ही पीट देने से बच्चे के रोने-चिल्लाने का स्वर और रहीम चाचा का थक गया मौन घुला-मिला होता है। अब रहीम चाचा में विरोध करने की शक्ति नहीं रह गयी है। कुछ कहने की कोशिश करते तो साँस भर जाती, खाँसने लगते, फिर अपनी थक गयी पसलियों को थाम वहीं खाट के एक कोने में लुढ़क पड़ते और भीतर से बटोरकर ढेर-सा बलग़म वहीं थूक, अपनी ढीली पड़ गयी गर्दन को तकिये के एक कोने में डाल, बड़े दुखते, कराहते और थके स्वर में पुकार उठते हैं, "या खुदा, रहम कर!"

एक दिन बड़ा खिजलाया, उकताया और दुखा हुआ रुदन, जो भीतर तक खुरच-खुरच डालता है और मन नहीं सम्हलता, चलता रहा। उस दिन उनके यहाँ दिन-भर से फ़ाका था। रहीम चाचा के मुँह में बूँद-भर पानी नहीं गया था। सकीना भी दिन-भर की भूखी थी। बच्चे के लिए दूध नहीं उतर रहा था। इसलिए बच्चे के रोने के स्वर में घुला-मिला सकीना का निस्सहाय रुदन मन को चीरता था।

एक पड़ोसी कुछ रोटियाँ और चावल लिये पहुँचा तो रहीम चाचा खाट से लगे पड़े थे। उनका दुबला-पतला चेहरा बड़ा निस्तेज पीला और डरावना हो गया था। कई दिनों की बढ़ गयी पकी-अधपकी हजामत और हड्डियों में धँसी आँखें। उन्होंने बड़े दयनीय ढंग से उसकी ओर देखा, फिर मुड़कर अपने पीछे खड़ी सकीना को देखते रहे। क्षण-भर सकीना वहीं खड़ी अपने आँसू पोंछती रही। फिर उसके आगे एक बर्तन रख दिया। उस बर्तन में चावल और रोटियाँ रखकर उसने रहीम चाचा की ओर देखा। रहीम चाचा ने क्षण-काल के लिए अपनी गर्दन घुमाकर बर्तन पर पड़े चावल और रोटियों की ओर ताका किया, फिर अपनी गर्दन सीधी कर बड़ी पीड़ा और दर्द के साथ अपनी पलकें मूँद लीं। उनकी आँखों के कोटरों के पास उभरी हड्डियों पर आँसू

चमकने लगे।

उसके बाद की दो रातें बड़ी शान्त और चुपचाप बीतीं, केवल रात के सुनसान में रहीम चाचा के खाँस पड़ने की आवाज़ सहसा फैल उठती, और कुछ नहीं।

तीसरी रात के अन्तिम प्रहर हठात् ही सकीना बड़ी ज़ोर से बिलख उठी और बच्चा रोने लगा।

लोगों में जगरम हो गयी। रहीम चाचा मर गये थे।

सुबह उनके कफ़न के लिए लोग चन्दा इकट्ठा कर रहे रहे थे।

* * *